श्रृंखला – तीन

मृतात्माओं की खोज...

(मृत्यु के बाद का जीवन)

'मृतात्माओं की खोज...' – एक बृह्द अन्तहीन स्तम्भ के अन्तर्गत, 'मृत्यु के बाद का जीवन' के द्वितीय श्रृखंला में 'पंचतत्व का उद्भव और विकास' – विषय पर यथासम्भव विचार किया गया है। अब प्रश्न यह उठता है कि 'जीवोत्पत्ति का मूल स्रोत' क्या है। 'पंचततव' के अतिरिक्त और कुछ भी हो सकता है – इस विषय पर शोधात्मक दृष्टि डालना आवश्यक है।

जहां तक मानव जीवन की प्रथम स्रष्टि का प्रश्न है, वहां यह कहना पर्याप्त है कि प्रकृति के प्रथम स्रष्टि का नियामक ही मानव स्रष्टि का आरम्भिक स्रोत रहा होगा।

सामान्यतः विविध धर्मों से जुड़े धर्माचार्य और मानवीय विश्लेषक गण आदि ने मानव जीवन के आरम्भिक बिन्दुओं को लेकर 'आदम और हौवा', 'माकण्डेय ऋषि के मुख से मानव स्रष्टि' का उल्लेख किया है।

उपरोक्त अप्रामाणिक उल्लेख को न तो जीव – जन्तुओं के वैज्ञानिक मानते हैं और न ही इस क्रम से 'मानव और स्रष्टि ' का कोई क्रम जुड़ता दिखता है।

पंचतत्वों (अग्नि 'तेज', वायु, आकाश, जल और पृथिवी) से जब प्रथम स्रष्टि का आरम्भ हो सकता है, उन्हीं तत्वों से ईश्वरीय अंशो या समूहों का आरम्भ हो सकता है तो 'मानव' की उत्पत्ति क्यों नहीं हो सकती है। हां, इस सम्भावना का प्रतिकार नहीं किया जा सकता कि – 'मानव' उत्पत्ति में पंचतत्वों का क्रम पूर्व क्रम से अलग रहा हो। सम्भवतः 'मानव' उत्पत्ति में पंचतत्वों का क्रम – 'पृथिवी, जल, वायु, प्रकाश 'अग्नि' और आकाश' हो सकता है।

प्रथम स्रष्टि, ईश्वरीय अंशों के आधिक्य के अन्तर्गत विविध ईश्वरीय समूहों और 'मानव' उत्पत्ति के क्रम में पंचतत्वों का क्रम भी बदल गया हो , इस सम्भावना से असहमत नहीं हुआ जा सकता।

अन्ततः विषय की गम्भीरता को देखते हुए यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि – प्रकृति की आरम्भिक स्रष्टि और मानव जीवन की आरम्भिक उत्पत्ति – दोनों एक दूसरे के पूरक रहे हैं और आगामिक क्रम में रहेंगे।

उपरोक्त क्रम में जो मैंने स्रष्टि के आरम्भिक स्रोत और मानव उत्पत्ति के आरम्भिक स्रोत को जोड़ने का प्रयास किया है वहां उन दोनों के मध्य बहुत कुछ रहस्य के रूप में लुका छिपा है। बहुत सा ज्ञान विज्ञान स्पष्ट और अस्पष्ट क्रम में दोनों की प्रथम स्रष्टि का एक ऐसा स्रोत विविध आयामों के अन्तर्गत बना हुआ है जिसे खोजने और पूर्ण रूप से स्पष्ट करने में सैकड़ों – हजारों वर्ष का समय और ज्ञान विज्ञान का असीमित प्रयास कम पड़ सकता है।

सांकेतिक आधार पर इतना अवश्य कहा या सोचा जा सकता है कि – 'पंचतत्व' का क्रमिक क्रम प्रथम स्रष्टि के सापेक्ष में ईश्वरीय तत्व समूह, मानव उत्पत्ति, जीव – जन्तु की उत्पत्ति और विविध सजीव – निर्जीव अवयवों की उत्पत्ति को लेकर निम्न हो सकता है –

1. प्रथम स्रष्टि – इस व्यापक असीमित और अपारिभाषित सी दीखने वाली 'प्रथम स्रष्टि' में पंचतत्वों का आरम्भिक क्रम सम्भवतः अग्नि 'तेज' तत्व के रूप में रहा होगा। उससे समन्वय स्थापित करने वाला तत्व, द्वितीय तत्व के रूप में 'वायु तत्व' रहा होगा। उन दोनों से समन्वय स्थापित करने वाला तत्व, तृतीय तत्व के रूप में 'आकाश तत्व' रहा होगा। उन तीनों तत्वों से समन्वय स्थापित करने वाला तत्व, चतुर्थ तत्व के रूप में 'जल तत्व' रहा होगा। उन चारों पूर्व तत्वों से यथोचित समन्वय स्थापित करने वाला तत्व, पंचम् तत्व के रूप में पृथिवी तत्व रहा होगा। सम्भवतः यही 'पंचतत्व' प्रथम स्रष्टि के आरम्भिक स्रोत रहे होंगे।

2. देव तत्व या ईश्वरीय अंशों का व्यापक समूह – यह ईश्वरीय अंशों का व्यापक समूह, सम्भवतः 'प्रथम स्रष्टि' के क्रम में प्रस्फुटित 'आध्यात्मिक ऊर्जा' के व्यापक 'समूह – दर – समूह' से कोई न कोई समन्वय स्थापित करने के उपरान्त ही सार्वभौमिक क्रम में बोधगम्य हुआ होगा।

3. मानव उत्पत्ति/ ईश्वरीय अंशों का सहयोगी – विविध सम्भावनाओं के अन्तर्गत, यह निश्चित सा लगता है कि – 'माानव उत्पत्ति' को लेकर पंचतत्वों का वह क्रम नहीं रहा होगा जो प्रथम स्रष्टि और ईश्वरीय अंशों के व्यापक समूह के अवतरण में रहा होगा।

'मानव उत्पत्ति' और उससे किसी न किसी रूप में जुडे 'जीव/जन्तु' की उत्पत्ति में पंचतत्वों का क्रमिक क्रम सम्भवतः 'पृथिवी तत्व ' से आरम्भ हुआ होगा। द्वितीय तत्व के रूप 'जल तत्व' प्रथम तत्व से कोई न कोई समन्वय स्थापित किया होगा। तृतीय तत्व के रूप में अग्नि'तेज' तत्व और चतुर्थ तत्व के रूप में वायु तत्व पूर्व तत्वों से कोई न कोई समन्वय स्थापित किया होगा । पंचम तत्व के रूप में आकाश तत्व पूर्व तत्वों से रचनात्मकं समन्वय स्थापित करके मानव संरचना का मूलाधार बना होगा।

इसलिए विषयान्तर न होने की दृष्टि से मैंने यह जो कहा है कि – स्रष्टि का प्रथम स्रोत एक दूसरे से मिलता जुलता ही नहीं है, बल्कि एक दूसरे के पूरक भी हैं।

एक पुरानी कहावत है कि तर्क/ कुतर्क से 'खुदा' नहीं मिलता है। हो सकता है, प्रथम स्रष्टि के उपरान्त जो 'महाप्रलय' हुई हो, उसमें बहुत से कारक और कारण विलुप्त हो गये हों। इसके साथ – साथ यह भी हो सकता है कि – 'स्रष्टि – विनाश' के क्रम में जो असंख्य – असंख्य 'मानव जीवन' और असंख्य 'जीव – जन्तुओं' का जीवन विनष्ट हुआ हो उससे स्रष्टि की पूर्व परंपरा प्रभावित और परिवर्तित हो गयी हो जिससे 'मानव जीवन' की उत्पत्ति का क्रम विधान थोड़ा – बहुत परिवर्तित हो गया हो।

'मानव उत्पत्ति को लेकर बहुत से आध्यात्मिक चिन्तकों / विचारकों और शोधपरक विज्ञ विचारको की सोच यह भी रही है कि आरम्भिक काल में 'मानव' का विकास/ संवर्द्धन जीव – जन्तुओं के माध्यम से हो सकता है।

सही मायने में मानव विकास के क्रम में एक स्थिति ऐसी आती है जब 'मानव' अपने विकास और आरम्भ की जिम्मेदारी और बोझ स्वयं उठाने लगता है।

मैंने पूर्व में इसे आवश्यक क्रम में स्पष्ट भी किया है कि प्रथम प्राकृतिक स्रष्टि और प्रथम मानव उत्पत्ति का समन्वयात्मक क्रम एक दूसरे का सशक्त पूरक रहा है और अभी भी किसी न किसी रूप में विविध आयामों के अन्तर्गत है। यह बात दूसरी है कि हम विविध क्रम से जुड़े 'विज्ञान और ज्ञान' के धुंधले चश्में से उसका सही – सही मूल्यांकन नहीं कर पा रहे हैं। लेकिन यह भी सच है कि यथार्थ और न्याय के क्रम को शत प्रतिशत बदला भी नहीं जा सकता ।

जहां तक प्रथम स्रष्टि और प्रथम मानव उत्पत्ति के मध्य विविध धर्मों से जुड़े देवी – देवताओं या आदि शक्तियों की उपस्थिति या उनके विविध योगदान की बात है वहां निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि – यदि उनका योगदान न होता तो मानव को 'राक्षस और मानव' में अन्तर न दीखता।

ईश्वरीय तत्व ही एक ऐसा नियामक है जो मानव को निरंतर 'सत्य – असत्य', 'जन्म – मृत्यु', 'लाभ – हानि', और 'मानव – राक्षस' आदि में निरंतर कोई न कोई अन्तर दर्शाता रहता है।

मैंने जो ईश्वरीय तत्व की बात कही है वह प्रथम स्रष्टि के स्रोत और प्रथम मानव उत्पत्ति के स्रोत के मध्य की वह कड़ी है जो प्रकृति और मानव के शोधन के मध्य कोई भी आकार – प्रकार ग्रहण कर सकता है। यही ईश्वरीय तत्व की विशेषता है।

ईश्वरीय अंश/तत्व या उन सबके व्यापक समूह का प्रभाव या अतिप्रभाव का प्रतिफल प्राप्त करना सामान्यतः किसी भी मानव के हाथ या वश में नहीं है। यदि यह सब समानता या ईश्वरीय असीमित आध्यात्मिक ऊर्जा के प्राप्ति का मार्ग सुगम या सरल होता तो मानव और मानवता के मध्य विविध असमानताओं या विविधताओं का व्यापक परिवेश स्वतः जन्म लेता । ईश्वरीय असीमित आध्यात्मिक ऊर्जा को लेकर 'प्राकृतिक स्रष्टि' और उससे सम्बन्धित मानव जीवन के विविध आयामों को निम्न क्रम में देखा – परखा जा सकता है–

1. 'प्रकृति –स्रष्टि' के उपरान्त, क्या प्रकृति के विविध स्थल एक जैसे हैं। सम्भवतः ऐसा नहीं है।

2. प्रकृति के बहुत स्थलों पर व्यापक जल समूह का फैलाव है। जिसे नदी, सागर, समुद्र आदि के रूप में जाना जाता है।

3. प्रकृति के बहुत से स्थलों पर व्यापक फैलाव के साथ – साथ बहुत दूर तक रेगिस्तान और ज्वलनशील पदार्थों का स्थायित्व है।

4. प्रकृति के बहुत से स्थल ऐसे है जहां पेड़ – पौधों का व्यापक जंगलों का समूह है। इनकी व्यापकता से यह भी कहीं न कहीं स्पष्ट हो जाता है कि वहां का जन जीवन आम जन जीवन से अलग – थलग है।

5. प्रकृति में कुछ स्थल ऐसे हैं जहां मानव सम्बन्धी जन जीवन का होना असंभव सा है। ऐसे में वहां पर अधिक गर्मी या ठंढक से मानव का जीवन सामान्य स्थिति में सम्भव नहीं है।

6. प्रकृति में व्याप्त पृथिवी का आकार/ प्रकार वृत्ताकार और अपनी निश्चित धूरी पर दिन – रात के मध्य घूमते हुए एक चक्कर पूरा कर लेती है। नवग्रह, आकाशीय नक्षत्र – तारों से युक्त प्रकृति देखने में अतिदर्शनीय लगती है।

6. नदी – पहाड़ और झरना , विविध वनस्पतियों और पुष्प वाटिकाओं के व्यापक समूह के अन्तर्गत, मानव – मानव में इतनी विविधताएं क्यों हैं ?

7. यह भी सच है कि – ईश्वर प्रदत्त दो वस्तुएं कभी बराबर नहीं होती हैं।

8. पृथिवी पर स्थापित सैकडों देशों में रहने वाले मानव और मानवीय संवेदनाओ को लेकर व्यापक अन्तर दिखता है ।

9. प्रकृति की विविधताओं के मध्य व्याप्त विविध स्रोतों को ध्यान में रखते हुए 'मानव – दर – मानव' धार्मिक/ आध्यात्मिक सोच और व्यापक लोक परंपराओं के मध्य जीता – मरता है।

वर्तमान प्रकृति में व्याप्त उपरोक्त विविधताओं को देखते हुए, यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि पूरी की पूरी मानव स्रष्टि या उत्पत्ति ईश्वरीय विधान के अन्तर्गत होता है।

यह कार्य उसके लिए कोई कठिन नहीं है। 'स्रष्टि – दर – स्रष्टि' के क्रम के आगामिक चरणों में कतिपय धार्मिक और विवेचनात्मक ग्रंथ इस बात की निरंतर उद्घोषणा करते रहते हैं कि ईश्वरीय तत्व कहां नहीं है, वह तो कण – कण में विद्यमान है।

देखिए, यह सही है कि उपरोक्त कथन कभी – कभी वास्तविकता के क्रम में विवादास्पद लगने लगता है। इतना ही नहीं, कभी – कभी तो यह सब 'व्यक्ति – दर – व्यक्ति' के मध्य यह सोचने के लिए विवश कर देता है कि – 'व्यक्ति – व्यक्ति' में भेदभाव, ऊंच – नीच, धनी – निर्धन आदि आदि के रूप में क्यों देखा जा सकता है।

'प्रकृति स्रष्टि, ईश्वरीय व्यापक – असीमित अंश और मानव स्रष्टि' के समन्वयात्मक अस्तित्व को लेकर निम्न सम्भावनाओं के अन्तर्गत, इस विवादास्पद विषय/ बिन्दु पर पुनःविचार किया जा सकता है –

1. यह यथार्थ की पृष्ठभूमि पर सच है कि व्यक्ति द्वारा किए गये सत्कर्मों और दुष्कर्मों का प्रतिफल उसे 'जन्म – जन्मान्तर' के क्रम में अवश्य मिलता है।

2. ईश्वर कण – कण में विद्यमान है । इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि आप आंख मूंदकर या कारण और कारक को अनदेखा करके जीवन जीने का उपक्रम सोचे या उसे गलत ढंग से कार्यान्वित करें।

3. ईश्वरीय कृपा या दृष्टि, व्यक्ति को जीवन जीने के लिए रस्ता प्रशस्त करता है। लेकिन चलना तो उसे अकेले ही पड़ता है। उस अकेले चलने की प्रक्रिया में व्यक्ति जो भी सत्कर्म या दुष्कर्म करता है , उसका प्रतिफल तो उसे भोगना ही पड़ता है।

4. यह भी सच है कि बहुत से ऐसे दुष्कर्म होते है जिसे महापातकीय दुष्कर्म कहा जा सकता है उसका प्रतिफल व्यक्ति प्रायश्चित के उपरान्त भी आगे के जन्मों में भोगता है।

5. बिना किसी कारण के कोई भी उत्पत्ति नहीं होती है। ऐसे में 'मानव' की उत्पत्ति को कारण विहीन नहीं कहा जा सकता है।

उपरोक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए ईश्वरीय अस्तित्व को एकदम से नकारा नहीं जा सकता है। हां, उसका अस्तित्व कहां और किसी रूप में है, यह सब आध्यात्मिक खोज और शोध का विषय है।

ईश्वरीय अंश का कार्य केवल मानव के हितों को ही देखना नहीं होता है। वह संरचना करने के साथ – साथ कहीं कहीं पर न्यायकर्ता बनकर दण्डविधान के अन्तर्गत न्याय भी करता है ।

भौतिक न्यायकर्ता तो साक्ष्य और गवाहों आदि के आधार पर न्याय करता है लेकिन ईश्वरीय न्याय विधान व्यक्ति के सत्कर्म और दुष्कर्मों के आधार पर न्याय करता है। हां, भौतिक न्याय में व्यक्ति अपने अनुकूल न्याय पाने के लिए छोटी अदालत से बड़ी अदालत तक पहुंच जाता है। लेकिन ईश्वरीय न्याय विधान में इस तरह की कोई सुविधा नहीं है। वहां तो न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत

'करो या मरो' का सिद्धान्त चलता है। इसीलिए ईश्वरीय अंश का अन्तहीन विधान व्यक्ति के सत्कर्म और दुष्कर्म के आधार पर अपना निर्णय लेता है। अब यह बात दूसरी है कि उसके न्याय को हम आप कितना सम्मान देते हैं।

यह कण – कण में ईश्वरीय तत्व विद्यमान होने की बात मैंने पूर्व ग्रंथों के आधार पर कहा है। लेकिन इसके साथ – साथ यह भी सच है कि ईश्वरीय तत्व 'सत्य और न्याय' पर प्रवाहित होता है। जहां तक 'सत्य –असत्य' और 'न्याय – अन्याय' के मध्य मानव और स्रष्टि प्रवाहित होंगे, वहां ईश्वरीय तत्व एक सीमा के बाद न्यायकर्ता बनकर न्याय करेगा न कि सुधारकर्ता बनकर सुधार की प्रक्रिया से जुड़ेगा।

ईश्वरीय सत्ता कभी भी किसी के साथ अन्याय नहीं करता है। उसका न्याय कभी भी व्यक्ति के साथ पक्षपात या अन्यायपरक् नहीं होता है।

प्रथम स्रष्टि के समापन, यानी 'महाप्रलय' के उपरान्त जब दूसरे स्रष्टि की उत्पत्ति 'पंचतत्व' के क्रमिक विधान के अन्तर्गत होती है तो उसमें निश्चित रूप से प्रथम स्रटि के बहुत सारे अवशेष दूसरी स्रष्टि को कुछ न कुछ प्रभावित करते रहते हैं। उस प्रभाव के अन्तर्गत 'मानव स्रष्टि' भी प्रभावित हो सकती है। उसी क्रम में दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवीं..... तेरहवीं स्रष्टि के उपरान्त, जब वैवस्वत मनु द्वारा प्रकृति की चौदहवी (14) स्रष्टि हुई तो क्रमिक क्रम में पूर्व के तेरहों (13) स्रष्टि के 'अवशेष – दर – अवशेष' ने 'मानव स्रष्टि' के साथ – साथ अन्य जीव – जन्तुओं या जड़ – चेतन आदि ने स्रष्टियों को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित किया है। – यह सब धार्मिक /आध्यात्मिक विज्ञजनों के लिए विचारणीय है।

प्रथम स्रष्टि के आरम्भ और अन्त (महाप्रलय) के मध्य 'मानव और जीव – जन्तु' के 'सूक्ष्म और स्थूल' के मध्य 'संयोजन ' (जन्म) और विखंडन (मृत्यु) का क्रम हजारों – हजारों (असंख्य) बार हुआ होगा। 'जन्म, मृत्यु और जन्म' के इस अनन्तगामी चक्रीय क्रम में मानव से सम्बन्धित विविध संस्कारों में से प्रमुख षोडश संस्कारों (गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन 'मौज्जी', व्रत '4', गोदान, समावर्तन, विवाह और अन्त्येष्टि आदि) का उनके 'संयोजन/विखंडन' (जन्म और मृत्यु) को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करता है। इन षोडश संस्कारों में से 'जन्म और मृत्यु' से सम्बन्धित संस्कार मानव के 'सूक्ष्म और स्थूल' को विशेष प्रभावित करता है। प्रथम संस्कार

माता के गर्भ को इतना प्रभावित कर देता है जिससे उसमें प्रवेश करने वाला 'सूक्ष्म', स्थूल के जुड़ने के उपरान्त जब गर्भ से बाहर नवजात शिशु के रूप में बाहर आता है तो उससे सम्बन्धित अन्य संस्कार उसे विशेष प्रभावित नहीं कर पाते हैं। संस्कारों के समुचित प्रभाव के अभाव में वह नवजात शिशु मानव जीवन की शतकीय यात्रा पूर्ण करने के उपरान्त जब किन्हीं कारणों के अन्तर्गत 'मृत्यु' (सूक्ष्म और स्थूल का विखंडन) को प्राप्त होता है तो उसका विखंडित 'सूक्ष्म' बहुआयामी दृष्टि से अतृप्त रह जाता है। ऐसे उस अतृप्त सा 'सूक्ष्म' यदि 'अन्येष्टि' सम्बन्धी संस्कार और उससे सम्बन्धित श्राद्ध आदि से वंचित रह जाता है या कर्मकाण्डीय प्रक्रिया उसके सापेक्ष में अधूरी रह जाती है तो निश्चित रूप से वह 'अतृप्त सूक्ष्म' अपनी आगामिक यात्रा समय से पूर्ण करके पुनः किसी गर्भिणी के गर्भ में प्रवेश नहीं कर पायेंगा। इस क्रम में हजारों – लाखों 'सूक्ष्म' अतृप्त अवस्था में आकाशीय पिण्डों में लम्बे समय तक दृग्भ्रमित अवस्था में पड़े रहते हैं। सूक्ष्मों की इस अव्यवस्था सम्बन्धी स्थिति को ध्यान में रखते हुए अन्तिम संस्कार (अन्त्येष्टि) के आवश्यक बिन्दुओं का यहां उल्लेख करना आवश्यक है।

''अन्त्येष्टि' संस्कार के पूर्व व्यक्ति के मृत्यु (सूक्ष्म और स्थूल का विखंडन) को लेकर उसके बन्धु– बान्धवों और उससे जुड़े लोगों के मध्य एक भययुक्त दुखद् वातावरण उत्पन्न हो जाता है। इसके कारण उसके 'अन्त्येष्टि' संस्कारों पर भी प्रभाव/कुप्रभाव पड़ सकता है। इसलिए मृत्यु के सम्बन्ध में एक रचनात्मक अवधारणा बनाने के उपरान्त ही इस अन्तिम संस्कार (अन्त्येष्टि) पर विचार करना सार्थक हो सकता है क्योंकि मृत्यु के उपरान्त उसका सूक्ष्म (आत्मा) जीवोत्पत्ति का नया स्रोत बन सकता है'।

सामान्यतः मृत्यु विलक्षण और भयावह समझी जाती है। मृत्यु का भय बहुतों को होता है, किन्तु वह भय ऐसा नहीं है कि उस समय (मरणकाल) की सम्बन्धित पीड़ा से वे अक्रान्त होते हैं, प्रत्युत उनका भय उस रहस्य से है जो मृत्यु के उपरान्त की घटनाओं से सम्बन्धित है तथा उनका भय उन भावनाओं से है जिनका गम्भीर संकेत जीवनोपरान्त सम्भावित और अचिंन्त्य परिणामों के उपभोग की ओर है।

जीवन की शतकीय यात्रा पूर्ण करने वाला व्यक्ति के 'सूक्ष्म और स्थूल' के विखंडन (मृत्यु) से पूर्व उसे कई सारे भयावह संकेत (कानों और नाक का

झुक जाना, आंखों और दातों का रंग परिवर्तन हो जाना, संज्ञा शून्यता, शरीरोष्णता का अभाव, कपाल से धूम निकलना और अचानक बायीं आंख से पानी गिरना आदि) मिलने लगते हैं। उसके असहज कृत्यों को देखकर उससे जुड़े सगे सम्बन्धी आदि भी अपने अन्तः बाह्य में कुछ न कुछ असहजता का अनुभव करने लगते हैं। ऐसी भयावह और असहज स्थिति में जब उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उसके सगे सम्बन्धियों को दुःख और अज्ञात भय से ग्रसित होना स्वाभाविक है।

उपरोक्त विषम और दुःखद परिस्थिति में मृत व्यक्ति के प्राणहीन स्थूल शरीर का 'अन्त्येष्टि'/ 'अन्तिम' संस्कार को उसके सगे सम्बन्धी और 'बन्धु – बान्धव' आदि सामान्यतः अज्ञात भयवश और सामाजिक परंपरा के निर्वाह हेतु किसी तरह पूर्ण करते हैं। अन्य संस्कारों की तरह इस अन्तिम संस्कार में उससे जुड़े लोगों में न तो कोई उत्साह रहता है और न ही भौतिक प्रसन्नता। ऐसे में उसका सूक्ष्म (मृतात्मा) अपनी आगामिक गतिशीलता के अन्तर्गत, पूर्णत तृप्त हो; यह आवश्यक नहीं है।

प्रथम स्रष्टि के आरम्भ और अन्त के मध्य असंख्य मानव और 'जीव – जन्तुओं' के 'सूक्ष्म – स्थूल' का संयोजन (जन्म) और विखंडन (मृत्यु) शतकीय(मानव) और दशकीय (जीव – जन्तु) क्रम में निरंतर होता रहा है। लेकिन यथोचित संस्कारों के अभाव में उन सबका आगामिक जीवन विविध प्रभावों/कुप्रभावों से प्रभावित भी होता रहा है। सामान्य क्रम में 'जीव /जन्तुओं' का आवश्यक संस्कार मानव को ही पूर्ण करना चाहिए।

चारों युगों (सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग) के सम्भावित अनन्तगामी अन्तरालों के बाद जब भी 'प्रलय/महाप्रलय' के उपरान्त अति दीर्घकालिक क्रम में नई स्रष्टि (प्राकृतिक स्रष्टि) हुई है तो उसके अन्तहीन सा लगने वाले विविध आयामों में असंख्य – असंख्य पूर्व सूक्ष्म 'पंचतत्व' के सापेक्ष में कारण और कारक दोनों बने हैं।

प्रथम स्रष्टि से लेकर तेरहवीं स्रष्टि के उपरान्त, वर्तमान में यह जो चौदहवीं स्रष्टि का कलियुग का मध्य कालीन कालखण्ड है उसमें मानव संस्कारों और उसके उन असाधु कृत्यों पर 'मेटाफिजिकल'क्रम में विचार करना इसलिए आवश्यक है जिससे 'जीवोत्पत्ति' का अनन्तगामी रचनात्मक प्रभाव दीखे।

सच तो यह है कि – 'स्रष्टि – विनाश और स्रष्टि' के क्रमिक क्रम में 'मानव' के 'सूक्ष्म और स्थूल' के संयोजन (जन्म) और विखंडन (मृत्यु) के साथ – साथ 'जीव और जन्तुओं' के 'सूक्ष्म और स्थूल' का भी संयोजन और विखंडन क्रम में हुआ है, हो रहा है और आगे भी होगा। लेकिन संस्कारों के अभाव में उनके असंख्य – असंख्य सूक्ष्मों का पारलौकिक यात्राक्रम कभी – कभी मानव सूक्ष्मों के यात्राक्रम को प्रभावित करने लगता है। वह 'जीव–जन्तु ' जो भौतक शरीर के माध्यम से भौतिक क्रम में 'मानव – दर – मानव' से परोक्ष/अपरोक्ष में जुड़ जाते हैं, उनमें अधिकांश ''जीव–जन्तु ' 'सूक्ष्म और स्थूल' के विखंडन (मृत्यु) के उपरान्त संस्कारों के अभाव में मानव सूक्ष्मों को किसी न किसी रूप में प्रभावित करने लगते हैं।

'मृतात्माओं की खोज ' के अन्तर्गत, इस 'कथ्य/तथ्य'का पूर्णतः प्रतिकार नहीं किया जा सकता है कि – संस्कारों का अभाव किसी भी व्यक्ति को 'सत्य – न्याय और अनुशासन' आदि से दिग्भ्रमित कर सकता है और उसी सापेक्ष में 'जीव – जन्तु' पर भी उसका कुछ न कुछ प्रभाव निश्चित पड़ता है। सम्पूर्ण प्रकृति का यह शाश्वत सत्य है कि – हर अन्त के बाद उसका आरम्भ निश्चित है। यदि ऐसा न हो तो 'स्रष्टि – विनाश और स्रष्टि' का क्रम विधान ही अवरुद्ध होने लगेगा ।

विषय की गम्भीरता और प्रकृति के विविध रहस्यों को ध्यान में रखते हुए 'अन्त' से 'आरम्भ' की ओर बढ़ने से 'जीवोत्पत्ति' को गहराई से जाना – समझा जा सकता है। इस क्रमिक क्रम में मानव के 'सूक्ष्म और स्थूल'के विखंडन (मृत्यु) को लेकर विविध क्रम में विचार करना आवश्यक है।

मृत्यु का भय बहुतों को होता है; किन्तु वह भय ऐसा नहीं है कि – मरणकाल के समय की सम्भावित पीड़ा से वे अक्रान्त होते हैं, प्रत्युत उनका भय उस रहस्य से है जो मृत्यु के उपरान्त की घटनाओं से सम्बन्धित है तथा उनका भय उन भावनाओं से है जिनका गम्भीर संकेत जीवनोपरान्त सम्भावित और अचिन्त्य परिणामों के उपभोग की ओर है। मृत्यु (सूक्ष्म और स्थूल का विखंडन) के विविध आयामों को लेकर इससे भिज्ञ विज्ञजनों का निम्न मत और विचार है–

1.सी0 ई0 बुल्लियामी ने 'इम्मार्टल मैन'(पृ0 2) में कहा है जीवन (मृत्युपरान्त या प्रेत) के सम्बन्ध में अत्यन्त कठोर और भयानक कल्पनाओं को लेकर अत्यन्त

उच्च और सुन्दरतम् कल्पनाएं की गयी हैं। इसमें तात्विक बात यही रही है कि – 'शरीर मरता है न कि आत्मा (सूक्ष्म)।

2. कठोपनिषद् (1/1/20) में आया है कि – 'जब मनुष्य मरता है तो एक सन्देह उत्पन्न होता है, कुछ लोगों के मत से मृत्युपरान्त जीवात्मा की सत्ता रहती है, किन्तु कुछ लोग ऐसा नहीं मानते हैं'।

3. ब्रह्मपुराण (214/34–39) ने ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख किया है, जिन्हें मृत्यु सुखद् और सरल प्रतीत होती है; न कि पीड़ाजनक और चिन्तायुक्त। उसने आगे कहा है कि – 'जो व्यक्ति झूठ नहीं बोलता है, जो मित्र या स्नेही के प्रति कृतघ्न नहीं है, जो आस्तिक और देवपूजा परायण है, ब्राह्मणों का सम्मान करता है तथा जो किसी से द्वेश/घृणा नहीं करता – वह सुखद् मृत्यु पाता है'।

4.अनुशासनपर्व (104/11–12; 144/49– 60) ने अकाल मृत्यु और दीर्घजीवन के कारणों को निम्न क्रम में व्यक्त किया है –

'नास्तिक, यज्ञ न करने वाले, गुरुओं और शास्त्रों का उलंघनकर्ता, धर्म न जानने वाले और दुष्कर्मी लोग अल्पायु होते हैं। जो चरित्रवान नहीं हैं, जो सदाचार के नियम तोड़ा करते हैं और जो कई प्रकार से सम्भोग क्रिया करते रहते हैं; वे अल्पायु होते है और नरक में जाते हैं। जो क्रोध नहीं करते, जो सत्यवादी होते हैं, जो किसी की हिंसा नहीं करते, जो किसी से ईर्ष्या नहीं करते और जो कपटी नहीं होते, वे शतायु होते हैं (104/11–12और 14)।

मृत्यु से सम्बन्धित उपरोक्त विचारों के साथ मृत्यु के आगमन के संकेतों को भी निम्न क्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1.'शान्तिपर्व (अध्याय 318) में आया है कि – 'जो अरुन्धती, ध्रुवतारा और पूर्ण चन्द्र तथा दूसरे की आंखों में अपनी छाया नहीं देख सकते, उनका जीवन बस एक वर्ष का होता है; जो चन्द्रमण्डल में छिद्र देखते हैं, वे केवल छह मास के शेष जीवन वाले होते हैं; जो सूर्यमण्डल में छिद्र देखते हैं या पास की सुगन्धित वस्तुओं में शव की गन्ध पाते हैं उनके जीवन के केवल सात दिन बचे रहते हैं' इसी क्रम में आसन्न मृत्यु के निम्न लक्षण हैं –

'दोनों कान और नाक का झुकजाना, आंखों और दातों का रंग परिवर्तन हो जाना, संज्ञाशून्यता, शरीरोष्णता का अभाव, कपाल से धूम निकलना और अचानक बायीं आंख से पानी गिरना – आसन्न मृत्यु का लक्षण है'।

2. 'मुंशी हीरक जयन्ती ग्रंथ (पृ0 246 – 268) में डा0 आर0 जी0 हर्षे ने कई ग्रंथों के आधार पर लिखा है कि – 'जब व्यक्ति स्वप्न में गदहा देखता है तो उसका मरण निश्चित है, जब वह स्वप्न में बूढ़ी कुमारी स्त्री देखता है तो उसे भय, रोग और मृत्यु का लक्षण समझना चाहिए या त्रिशूल देखता है तो मृत्यु परिलक्षित होती है (पृ0 251)।

3. आदि काल से ही लोगों में ऐसा विश्वास रहा है कि – मरते समय व्यक्ति जो विचार रखता है, उसी के अनुसार दैहिक जीवन के उपरान्त उसका जीवन आक्रान्त होता है (अन्ते या मतिः सा गतिः), मृत्यु के समय व्यक्ति को सांसारिक मोह माया छोड़कर ईश्वर का 'ध्यान – जप' करना चाहिए।

व्यक्ति के मृत्यु को लेकर उपरोक्त क्रम में उसकी आवश्यक सम्भावनाओं को यथा सम्भव प्रस्तुत करने के उपरान्त, यह आवश्यक हो जाता है कि उसके मृत शरीर (स्थूल) का अन्तिम संस्कार (अन्त्येष्टि आदि) विधिवत्क्रम में किया जाय। सामान्यतः होता यह है कि – व्यक्ति के मृत्यु के उपरान्त, उससे जुड़े बन्धु – बान्धव और उसके समकक्ष का परिवेश इतना शोकग्रस्त और दुखद् हो जाता है जिससे निश्चित रूप से उसका अन्तिम संस्कार प्रभावित होता है। उसके सगे सम्बन्धियों के बीच यह अवधारणा बन जाती है कि – शीघ्राति शीघ्र इस मृत शरीर का अन्तिम संस्कार कर दिया जाय। 'कर्मकाण्डीय' प्रक्रिया पर पूर्व संस्कारों की तरह कोई विशेष ध्यान नहीं देता है। उससे भिज्ञजन भी उस दुखद वातावरण में ज्यादा हस्तक्षेप करने का दुस्साहस नहीं कर पाते हैं। उन सबके अन्तः में यह विचार रंचमात्र भी नहीं आता है कि – यह सब तो जीवन का एक बहुत बड़ा 'काया परिवर्तन' है, इसमें संस्कारों के प्रति अल्पता अक्षम्य सा है।

(विशेष –1: मृत व्यक्ति के 'त्रयोदशाः संस्कार में 'अन्त्येष्टि' के उपरान्त दस दिन तक प्रतिदिन एक – एक पिण्डदान 'मृतात्मा'को अंगुष्ठमात्र शरीर धारण करने के लिए आवश्यक है। सामान्यतः लोग दसवें दिन ही दसों पिण्डदान पुरोहित या महापात्र से दिलवा देते हैं। क्या दस दिन तक उपवास करने वाला व्यक्ति ग्यारहवें दिन, दस दिन का भोजन ग्रहण करने में सक्षम हो पायेगा।

विशेष – 2: 'त्रयोदशाः संस्कार' की इति तो तब हो जाती है जब 'अन्त्येष्टि' संस्कार के तीसरे या चौथे दिन पुरोहित द्वारा होमादि कराके उसके (मृत व्यक्ति) सगे सम्बन्धी सामान्य जीवन जीने का प्रयास करने लगते हैं। भला सोचो, मृत

व्यक्ति (मृतात्मा) का आगामिक यात्रा के लिए अंगुष्ठमात्र शरीर बना ही नहीं और उसके बन्धु बान्धवों ने अन्तिम संस्कार पूर्ण कर डाला।

विशेष – 3: उपरोक्त क्रम में अन्तिम संस्कार की अपूर्णता में 'पुरोहित' के साथ – साथ उसके परिवार वाले भी अधर्म और जघन्य असाधुकृत्य के भागीदार निश्चित होंगे।

विशेष –4: हम तो यहां तक कहते हैं कि – व्यक्ति की मृत्यु चाहे जैसे भी हुई हो, यदि उसके 'त्रयोदशाः' संस्कार में 'नारायण बलि' या उसके समकक्ष कर्मकाण्डीय प्रयोजन पूर्ण कर दिया जाय जो वह मृतात्मा कभी भी अतृप्त नहीं रहेगी। ऐसे में उसका 'मेटाफिजिकल' क्रम हमेशा सार्थक रहेगा।

विशेष –5: विविध 'धर्म/सम्प्रदाय' से जुड़े व्यक्तियों को चाहिए कि – वह अपने से जुड़े मृत व्यक्ति का 'अन्तिम संस्कार' में रंचमात्र भी कोताही न करें। क्योंकि इससे उस मृतात्मा (मृत व्यक्ति का सूक्ष्म) का 'मेटाफिजिकल' क्रम असामान्य और अव्यवस्थित हो सकता है।)

व्यक्ति के आरम्भिक संस्कार से लेकर अन्तिम संस्कार (अन्त्येष्टि) तक के मध्य के आवश्यक संस्कारों का निर्वाह, यदि धर्म/सम्प्रदाय के आधार पर विधिवत् किया जाय तो 'जीवोत्पत्ति' का मूलाधार और सशक्त हो सकता है। सामान्यतः संस्कारहीन व्यक्ति का 'लोक/परलोक' – दोनों अव्यवस्थित हो सकता है। 'सूक्ष्म और स्थूल' के संयोजन (जन्म) और विखंडन (मृत्यु) के आरम्भ और अन्त के मध्य के संस्कारों के सम्पन्न होने का अपना एक अलग महत्व है। इससे व्यक्ति के 'जन्म और मृत्यु' के मध्य का अन्तराल बढ़ता है, उसी जगह यदि संस्कारों को गलत या आधे/ अधूरे ढंग/क्रम से सम्पन्न किया जाय तो व्यक्ति के जन्म और मृत्यु के मध्य का अन्तराल घट भी सकता है।

(विशेष – व्यक्ति पर संस्कारों का प्रभाव उसी तरह पड़ता है जिस प्रकार कोई चिकित्सक किसी व्याधियुक्त व्यक्ति की चिकित्सा सही या गलत ढंग/क्रम से करता है।)

'सूक्ष्म और स्थूल' के संयोजन और विखंडन के मध्य के अन्तराल को लेकर निम्न सम्भावनाएं 'स्रष्टि–विनाश और स्रष्टि' और 'जीवोत्पत्ति' के सापेक्ष में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. यदि स्रष्टि के अधिकांश मानव/व्यक्ति के जन्म और मृत्यु के मध्य का अन्तराल दीर्घ होता है तो स्रष्टि का अन्तराल भी उसके सापेक्ष में दीर्घ हो सकता है। इस क्रम में 'जीवोत्पत्ति' का क्रम रचनात्मक हो सकता है।

2.यदि स्रष्टि के अधिकांश मानव/व्यक्ति के जन्म और मृत्यु के मध्य का अन्तराल लघु होता है तो स्रष्टि का अन्तराल भी उसके सापेक्ष में लघु हो सकता है। इस क्रम में 'जीवोत्पत्ति' का क्रम रचनात्मक/ विध्वंसात्मक – दोनों हो सकता है।

3..यदि स्रष्टि के अधिकांश मानव/व्यक्ति के जन्म और मृत्यु के मध्य का अन्तराल संस्कार विहीन और आधा / अधूरा होता है तो उसके सापेक्ष में 'अकालमृत्यु, अल्पायु, सामूहिक नरसंहार और चारित्रिक पतन आदि ' की सम्भावनाएं व्यापक स्तर पर बढ़ती हैं। कभी – कभी इसका विपरीत प्रभाव 'जीवोत्पत्ति' के क्रम पर पड़ता है।

4. मानव के संरक्षण में जो भी 'जीव – जन्तु' रहते हैं उनके भी 'सूक्ष्म – स्थूल' के संयोजन (जन्म) और विखंडन (मृत्यु) के मध्य कम से कम आरम्भिक और अन्तिम संस्कार सम्पन्न होना चाहिए। इस क्रम में उनके भी 'जन्म – मृत्यु और जन्म' के मध्य का अन्तराल बढ़ सकता है।

5. यदि मानव के संरक्षण में रहने – बसने वाले जीव – जन्तुओं (कुत्ता, बिल्ली, गाय, हाथी, बाघ आदि) का यथोचित संस्कार विधिवत् सम्पन्न हो तो उनकी योनियों में भी परिवर्तन होना एक सीमा तक सम्भव हो सकता है।

उपरोक्त पांचों बिन्दुओं के सापेक्ष में यदि 'जन्म –जन्मान्तर' और 'लोक/परलोक' को लेकर शोधात्मक क्रम में विचार किया जाय तो किसी भी जीव (मानव और जीव – जन्तु) के 'सूक्ष्म – स्थूल' के संयोजित और विखंडित क्रम के मध्य का अन्तराल बढ़ सकता है। इससे 'स्रष्टि – विनाश और स्रष्टि' के क्रमिक क्रम में स्रष्टि का सार्वभौमिक आयाम और अन्तराल विस्तृत और अनन्तगामी हो सकता है।

'मृतात्माओं की खोज' के अन्तर्गत, मृत व्यक्ति से सम्बन्धित अन्तिम संस्कार पर नये सिरे से विचार करना अति आवश्यक है। इसके साथ – साथ 'जीव – जन्तु' के संस्कारों को लेकर उससे सम्बन्धित विज्ञ शोधकर्ताओं को शोधात्मक दृष्टि अपनाने का प्रयास करना चाहिए।

इस वैचारिक क्रम में 'धार्मिक/ आध्यात्मिक' धर्माचार्यों और तात्विक मीमांसकों के साथ – साथ वैज्ञानिकों को भी अपना – अपना शोधात्मक सहयोग देना चाहिए। इसके साथ – साथ यह भी सच है कि इन सबका मूल्यांकन केवल तथाकथित धार्मिक ग्रंथों के आधार पर ही नहीं करना चाहिए।

मेरा तो यहां तक कहना है कि – जब भी 'मानव स्रष्टि' का मूल्यांकन किया जाय तो पूरी की पूरी मानवता से सम्बद्ध 'मानव स्रष्टि' को विविध धर्मों में बांटकर न देखा जाय। इस विवादास्पद बिन्दु को मानवता या मानवधर्म के आधार पर जांचा – परखा जाय। यही रचनात्मक प्रक्रिया समग्र मानव जाति और विश्व के सभी प्राणियों के लिए हितकर होगा।

मानव स्रष्टि के सापेक्ष में कभी भी एक मापदण्ड को क्रमिक क्रम में मानव जाति पर आरोपित नहीं किया जा सकता। आप विश्व के किसी भी विशिष्ट क्षेत्र या देश के मानव को जब भी 'मानव स्रष्टि' के सापेक्ष में देखने का प्रयास करेंगे तो आपको उसमें व्यापक अन्तर दिखेगा। यही नहीं, बल्कि मानव स्रष्टि के क्रम में अधिकांश मानव आपको एक दूसरे से अलग – थलग दिखेगा।

आकार – प्रकार से लेकर भौतिकता के आधार पर भी यदि 'मानव स्रष्टि' को विवेचित करने का प्रयास किया जाय तो उससे बहुत सारे गोपनीय रहस्यों का उद्घाटन हो सकता है। कतिपय प्रमुख गोपनीय रहस्यों को 'जीवोत्पत्ति' के सापेक्ष में निम्नक्रम में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा सकता है –

1.प्रथम प्राकृतिक स्रष्टि में सम्भवतः 'देवांश तत्वों का अन्तहीन सा व्यापक समूह' 'मानव स्रष्टि' के साथ – साथ 'जीव – जन्तु' और अन्य प्राकृतिक अवयवों का कारण और कारक – दोनों बना होगा।

2. प्रथम स्रष्टि में 'पंचतत्वों' का आरम्भिक क्रम 'अग्नि (तेज) तत्व, वायु तत्व, आकाश तत्व, जल तत्व और पृथिवी तत्व' सम्भवतः रहा होगा। ऐसे में देवांश तत्वों का व्यापक समूह किसी भी रचना/विध्वंस का सूत्रधार स्वतः या स्वयं हो सकता है।

3. सम्भवतः प्रथम स्रष्टि में ही या उसके विनाश के उपरान्त पंचतत्वों का परिवर्तित क्रम 'पृथवी तत्व, जल तत्व, प्रकाश 'तेज' तत्व, वायु तत्व और आकाश तत्व आदि' निश्चित रूप से हो गया होगा।

4. प्रथम स्रष्टि में सम्भवतः जो भी 'जीवोत्पत्ति हुई होगी, उसके 'सूक्ष्म और स्थूल' के विखंडन के उपरान्त, उनके सूक्ष्मों की आगामिक गति 'अग्नि (तेज) तत्व, वायु तत्व, आकाश तत्व, जल तत्व और पृथिवी तत्व' के सापेक्ष में न होकर 'पृथवी तत्व, जल तत्व, प्रकाश 'तेज' तत्व, वायु तत्व और आकाश तत्व आदि' के सापेक्ष में हो गयी होगी। यदि ऐसा न होता तो कोई भी विखंडित सूक्ष्म अपनी वायावी यात्रा पूर्ण करने के उपरान्त किसी माता के गर्भ प्रवेश न कर पाता और उसका 'पुनर्जन्म' न हो पाता।

5. यह सच है कि किसी भी भौतिक/आध्यात्मिक ऊर्जा का अन्त सा स्थाई समापन नहीं होता है। इसलिए इस क्रमिक चक्रीय क्रम में वर्तमान स्रष्टि के विविध आयामों का 'स्रष्टि और विनाश' निरंतर होता रहता है।

उपरोक्त पांचों बिन्दुओं की सार्थकता पर किसी तरह के भ्रम या संदेह को स्थाई स्थान नहीं दिया जा सकता है।

अन्ततः एक असीमित सीमा तक यह कहना सार्थक लगता है कि – ''मानव स्रष्टि' का नियामक प्राकृतिक स्रष्टि का विविध आयाम ही हो सकता है। 'स्रष्टि –दर –स्रष्टि' के क्रम में प्राकृतिक स्रष्टि के सापेक्ष में मानव स्रष्टि में जो भी परिवर्तन होता है वह पूर्व परंपरा का द्योतक हो सकता है'। इसी क्रम में विविध सूक्ष्म भी किसी न किसी रूप में विविध जीवोत्पत्ति के कारण बन सकते हैं।

इस क्रमिक श्रृंखला (मृतात्माओं की खोज...) के आगामिक पक्ष को प्रस्तुत करने के पूर्व 'मानव जीवन' के विविध संस्कारों में से अन्तिम संस्कार (सूक्ष्म और स्थूल का विखंडन) पर आवश्यक चर्चा करना आवश्यक है। क्योंकि असंख्य मानव के व्यापक सूक्ष्मों का उसके स्थूलों से विखंडन यदि किसी व्यापक 'महामारी' या अति व्यापक 'नरसंहार' से हुआ है या हो रहा है तो उसके अन्तिम संस्कारों का पूर्व क्रम विधान बहुत ज्यादा उपयोगी नहीं हो सकता है। कर्मकाण्डीय क्रम में यह सब विज्ञ विद्वानों के लिए विचारणीय है।

– क्रमशः